INDIAN STREAMS RESEARCH JOURNAL
ISSN NO : 2230-7850
IMPACT FACTOR : 5.1651 (UIF)
VOLUME - 14 | ISSUE - 3 | APRIL – 2024

मैथिलीशरण गुप्त के रचना संसार में देश प्रेम का अध्ययन

डॉ. लक्ष्मी कान्त मिश्रा
हिन्दी विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

सारांश –

मैथिलीशरण गुप्त की रचनाकालीन साहित्यिक परिस्थितियाँ वही हैं जो आधुनिक हिन्दी साहित्य के क्रम भारतेन्दु और द्विवेदी युग में पायी जाती है। सामाजिक दृष्टि से यह युग समाज सुधार के आन्दोलन का युग था, बालविवाह, बहुविवाह, अनमेल विवाह, छुआछूत, मदिरापान, वैश्यागमन की कुप्रवृत्तियों से दुःखी समाज के जीवन को सुखी और सम्पन्न बनाने के लिये साहित्यकारों, समाज सुधारकों और बुद्धजीवियों का आन्दोलन चल रहा था। देश पराधीनता के पाश में आबद्ध था। इसलिये हिन्दू, मुसलमान, अमीर, गरीब सभी स्तर के भारतीय समाज के लोग अभावग्रस्त जीवन जी रहे थे। भारतीय का यह पराभव अपनी चरमावस्था को पहुँच गया है। अगर इस दशा में भी हम जागृत न हुए होते तो हमारा अस्तित्व सदा के लिये नष्ट हो गया होता। इस जागरण का मंत्र सबसे अधिक सन्तों, साधकों, साधु और फकीरों ने फूंका किन्तु उन्हीं के साथ कवियो का भी समाजोत्थान प्रयास चलता रहा। भारतेन्दु युग में भारतेन्दु और उनके मण्डल के लोगों के साथ ही उर्दू शायरी के क्षेत्र में इकबाल इस जागरण की भेरी को ध्वनि दे रहे थे। इसी परम्परा में मैथिलीशरण गुप्त ने भी अपना योगदान किया।

मुख्य शब्द – मैथिलीशरण गुप्त, समाज सुधारक, आन्दोलन एवं देश प्रेम ।

प्रस्तावना –

मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी जी के युग के प्रतिनिधि कवि थे। उन्होंने परिवर्ती काव्य शैलियाँ भी अपनायी थी, वे इति वृत्तात्मक कवि के अतिरिक्त उन्होंने खण्ड काव्य और महाकाव्य भी रचना उन्होंने दर्जनों कथा काव्य लिखी। इन काव्यों का विषय ''हिन्दू जातीयता'', हिन्दू जातीय वीर एवं पौराणिक पुरूष अवतार है। इन सब कथाओं में गुप्त जी मनुष्य के परिचित दुख सुख का वातावरण लेकर उपस्थित होते हैं, लगभग सभी में करुण मूलक मानव, प्रेम, विश्व प्रेम एवं बलिदान का सन्देश है। इन काव्यों की परम्परा पिछले दो–चार वर्ष तक चली है और इन पर राष्ट्रीय आंदोलनों का प्रभाव भी लक्षित है, परन्तु मूलरूप में द्विवेदी युग के काव्य के ही अधिक निकट है। उनमें हमें उत्तरोत्तर विकसित कला का परिचय मिलता है। इनके अतिरिक्त उनकी अन्य प्रसिद्ध काव्य रचनायें भारत–भारती, झंकार है। पहली पुस्तक हिन्दी की पहली राष्ट्रीय रचना है जिसमें देश एवं जाति की ह्रासोन्मुखी प्रवृत्तियों के प्रति पहली बार असन्तोष प्रकट किया गया है। दूसरी पुस्तक भाव प्रधान गीतों का संग्रह है जिन पर छायावाद काव्य के विषय एवं शैली का प्रभाव स्पष्ट है।[1]

देश की सांस्कृतिक चेतना से ही राष्ट्रीय चेतना जन्मी है और इस सांस्कृतिक राष्ट्र चेतना के अग्रदूत थे स्वामी विवेकानंद।[2] विवेकानन्द ने देश को वैराग्य और सन्यास की भावना से हटा कर गृहस्थ जीवन और सामाजिक संघर्ष की श्रेष्ठता प्रतिपादित की। भारतीयों के बाहों में बल आया, आँखों में तेज जागा और हम संघर्ष

के लिये सन्नद्ध हो उठे। जीवन और जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण की जलराशि पर पड़ी हुई सामाजिक व सांस्कृतिक कुण्ठा की काई साफ होने लगी। निग्रह एवं संग्रह के इस सामाजिक व सांस्कृतिक अभियान को व्यक्तियों व संस्थाओं ने स्पष्ट रूप दिया।[3] यह कामना है कि दोनो जातियाँ एकता के सूत्र में बंध जाये तथा आपस के विग्रह को भूल जायें –

हिन्दू मुसलमान दोनो अब
छोड़े वह विग्रह की नीति।[4]

''जाओ तुम डर छोड़ अपनी अजान दो और गा बजा कर उतारें हम आरती–''सिद्धराज तीस करोड़ जनता में तीस कोटि भगवान का दर्शन करने वाला कवि जातीय नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त यह समझना चाहिए कि राष्ट्रीयता एक भाव है तथा वह एक ऐसा भाव है जिसे हम किसी भी स्थान पर ध्वनित कर सकते हैं। राष्ट्रीयता सब मिलाकर है, कोई एक नहीं। उसे ध्वनित करने के लिए किसी भी संस्कृति को अपनाना पड़ेगा। अतः अब तक किसी की रचना में संकीर्णता न आये, तब वह राम का उपासक होने के कारण अराष्ट्रीय नहीं हो सकता। वास्तव में राष्ट्रीयता एक भाव पक्ष की चीज है।''[5] उनकी दृष्टि में मनुष्यत्व सबसे ऊँचा अवश्य है और मानवता का आदर्श ही उनका आदर्श है। अतः मनुष्यता के नाते उन दोनों के साम्प्रदायिक भेद के कारण उन्हें वे विभिन्न दृष्टिकोण से नहीं देख सकते वरन् दोनो को वे एक समझते हैं। आद्योपांत वे गांधीवाद के रंग में रंगे हुए हैं और गांधीवाद की राष्ट्रीयता पर सन्देह करना मूर्खता से होड़ लेना है।[6]

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गुप्त जी की संकुचित दृष्टि से समझने की चेष्टा करना उनके साथ सरासर अन्याय है। वस्तुतः वे राष्ट्रीय कवि हैं पर यह भी सही है कि राष्ट्रीयता के नाम पर केवल नाम के लिये वे कुछ छोड़ सके – यह असम्भव है। दूसरों को अपनाने के लिए वे व्यग्र हैं पर अपनी रक्षा करके ही –

जो पर है अपने हो जाये
न कि उलटे अपने खो जाये।[7]

गुप्त जी के काव्य में अस्मिता और दर्शन का प्रश्न है, वे एक शुद्ध भारतीय संस्कृति के व्याख्याता विराट व्यक्तित्व के रूप में अपने को प्रस्तुत करते हैं। वे अपने कवि व्यक्तित्व को राम कृपा मानते हैं और देश के साथ अपनी पहचान प्रस्तुत करते हैं–

''हम कौन थे, क्या हो गये हैं, और होंगे क्या अभी।
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्यायें सभी।।''[8]

उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति के गायक कवि मैथिलीशरण गुप्त की रचना ''भारत भारती'' तो शुद्ध रूप से राष्ट्रीय काव्य है। पंचवटी, जयद्रथ वध, साकेत, नहुष, जयभारत, सिद्धराज आदि की विषय सम्पदा भारतीय पुराण और इतिहास की कथाओं की ऐसी पनुर्रचना है जिसमें कवि ने भारतीय संस्कृति के माध्यम से सर्व धर्म समन्वय, भावात्मक एकता, सामाजिक उत्थान और राष्ट्रीय पुर्नगठन के सौ–सौ सुकुमार सपने संजोये हैं। सिद्धराज का चरित्र एक विजेता और प्रेमी का मणि कांचन योग है। नहुष और गुरूकुल की कथा भारतीय संस्कृति की रक्षा और भारतीय वीरों के बलिदान की अमर गाथा है।

विश्लेषण –

गुप्त जी रचनाओं में सामाजिक चेतना, राष्ट्रीय भाव धारा, सांस्कृतिक वर्चस्व, समाजवादी और प्रगतिशील चेतना तथा अस्मिता और दर्शन मूलक दृष्टिकोण से सम्बन्धित विषयों की भरमार है। सत्य यह है कि सब उनके काव्य का मुख्य तत्व है। उनकी इस धारणा का प्रभाव उस युग के कवियों में देखने को मिलता है। समकालीन राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ भिन्न भूमियों को अपना रही थी। कांग्रेस के उत्थान और राष्ट्रीय आंदोलन के फलस्वरूप देश प्रेम की भावना को जागृत करना और फैलाना ही कवियों का कर्तव्य था। आर्य

समाज के आंदोलन ने अंध विश्वास, अवतारवाद, मूर्तिपूजा का खण्डन किया था। युग की यह भावना प्रथमतः गुप्त जी के काव्य में मुखरित हुई और उनकी भारत–भारती सबसे पहले जन जागृति को प्रेरित करने वाली रचना बनी। ''भद्र भावोद भाविनी'', भारत–भारती में कवि का काव्यादर्श इसी रूप में व्यक्त हुआ है।

मैथिलीशरण गुप्त ने देश की जनता को उसके समक्ष उसकी अतीत कालीन सम्पन्नता, वर्तमान दुर्गति और भविष्य की बरबादी की आशंकाओं से अवगत कराया है। उनकी भारत–भारती में यह स्वर मुख्य है जैसे –

हम कौन थे, क्या हो गये हैं, और क्या होंगे अभी,
आओ विचारें आज मिल कर समस्यायें सभी।[9]

सच बात तो यह है कि उर्दू और हिन्दी पाठकों के बीच इकबाल और मैथिलीशरण गुप्त को इतनी बड़ी लोकप्रियता मिलने का कारण ही यही था कि वे अपने समय की अपनी भाषा के सर्वाधिक जानदार राष्ट्रवादी कवि थे। गुप्त जी मूल रूप से भारतीय संस्कृति के गायक थे। इसलिए उनकी रचना भूमि पर प्रतिफलित होने वाला राजनीतिक विचार भारतीय मनीषा द्वारा कल्पित सिद्धान्तों पर अवलम्बित है। जिस युग में गुप्तजी ने काव्य की साधना का शुभारम्भ किया था, वह युग भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का युग था, जिसका परिणाम भारतीय राजनीति के क्षेत्र मे स्वतंत्र प्रजातंत्र देश की स्थापना था। गुप्त जी को यही विचार अपनी काव्य सृष्टि के सन्दर्भ में उजागर करने पड़े थे। विद्वानों ने उनके काव्य की राजनीतिक अवधारणा को स्पष्ट करते हुए यह माना है कि, राजनीतिक क्षेत्र में आज की सबसे बड़ी उपलब्धि है – प्रजातन्त्र। राज की राज्य व्यवस्था सेवक सेव्य भाव वाली स्थिति नहीं है। मैथिलीशरण गुप्त प्रजातन्त्र की स्थिति से पूर्णतः परिचित थे। उन्होंने कवि कर्म का निर्वाह करते हुए स्थिति विशेष में राजतन्त्र और प्रजातन्त्र दोनों की बातें कही है। ''वे विगत हो नरपति रहे नर आप'' (साकेत), कहते हुए साम्यवादी हामी भरते हैं और कभी कहते हैं – राजवंश भी रहे प्रजा के साथ सदा समभक्त पृथ्वी पुत्र की और एक श्रमिक जो आज भूमि को खन सकता है। फल सुयोग्य हो वही राष्ट्रपति बन सकता है। राजा–प्रजा की आशा–आकांक्षा व्यक्त करते हैं और शुद्ध मन से प्रजातन्त्र के दोष वस्तुतः स्वयं हमारे राजा–प्रजा मान लेते हैं। सम्भवतः इन्हीं दोषों से बचते रहने की इच्छा से खिंचकर एक नेता या एक राजा की आवश्यकता का अनुभव करने लगते हैं। विश्व वेदना और कभी प्रजातन्त्र की कठिनाइयों की परिकल्पना करते हुए ''पड़े न कोई प्रजातंत्र वालों के पाले'' (अर्जित) तक कहे जाते हैं। गुप्त जी इन पंक्तियों में उनका प्राचीन संस्कार ''बोलता या न बोलता हो समकालिक जनतन्त्र की कठिनाइयों और बुराइयों का प्रभाव अवश्य स्पष्ट हो उठता है। दूसरे पर शासन करने की प्रवृत्ति के कारण युद्ध सदा अवश्यसम्भावी है। गुप्तजी इस बात को समझते थे, अतएव ''हमारी असि न रूधिर रत हो। न कोई कभी हताहत हो।'' स्वदेश–संगीत की कामना करते हुए भी और गांधीवाद अनुयायी होते हुये भी वह कम से कम ''राज्य के नहीं धर्म के अर्थ। उठेंगे तब ये शास्त्र समर्थ।'' वन–वैभव का सिद्धान्त अपना लेते हैं। तब चाप की कोटियों से शान्ति की स्थापना और संतापितों के रक्षार्थ पापियों को दण्ड (साकेत एवं जयभारत) की नीति अपने पर बल देते हैं।[10]

जनतंत्र और राष्ट्रीयता ने मिलकर गुप्त जी को मानवतावाद का पोषक बना दिया है। उसमें अतीत की सात्विक उदार नीतियों का भी योग है। उन्होंने विश्व–बन्धुत्व पर ही नहीं लिखा, राष्ट्र–राष्ट्र के बीच की दूरी कम करने का भी प्रयास किया है। ''युद्ध और विश्व वेदना'' नामक रचना में उनकी इस भावना के दर्शन होते हैं –

किन्तु हमारा लक्ष्य सदा अम्बर भू सागर,
एक नगर सा बने विश्व, हम उसके नागर।

हिडिम्बा कुंती से कहती हैं –

तो जो भी नरों से हैं, नरों का भेद करते हैं,
वे क्या नहीं मिथ्या दर्श में पड़ जाते हैं।[11]

गुप्तजी ने अपने जीवन का लक्ष्य पुरूषार्थ की सिद्धि माना था। वे कर्तव्य धर्मा–कवि थे। इसे कुछ लोग गान्धीवाद का प्रभाव मानते हैं। डॉ. त्रिलोचन पाण्डेय ने यह स्वीकार किया है कि मैथिलीशरण गुप्त की राजनीतिक विचारधारा पुराने गौरव स्थापित करने और वर्तमान दुर्गति को मिटाने का सन्देश देती है।

गुप्त जी ने भारतीय जन–जीवन के दुर्लभ गुणों को देखा और परखा। गान्धी जी की स्वराज्य, सुराज्य की स्थिति को गुप्त जी ने अपने काव्य में प्रस्तुत किया है। उनमें सबके कल्याण की मनोकामना है –

पशु तुल्य परवशता मिटे प कटे यथार्थ मनुष्यता,
इस कूप मण्डूकत्व से परमेश पिण्ड छुड़ाइये।
जीवन गहन वन सा हुआ है, भटकते हैं हम जहाँ,
प्रभुवर सदय होकर हमें तब सत्य तक पहुँचाइये।[12]

सच बात यह है कि हिन्दी में राजनीतिक चेतना की सच्चे अर्थों में अभिव्यक्ति मैथिलीशरण गुप्त ने ही की है। राष्ट्र के रूप में भारत की कल्पना 1885 में कांग्रेस की स्थापना के बाद शुरू हुई। ''मातृभूमि एवं देश प्रेम'' की कवितायें सबसे पहले मैथिलीशरण गुप्त ने ही लिखी। मातृभूमि ही सर्वेश बन गई –

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है,
सूर्य स–चन्द युग मुकुट मेखला रत्नाकर है,
नदियाँ, प्रेम प्रवाह, फूल तारे मण्डन हैं,
बन्दी जन, खग वृन्द, शेष फन सिंहासन है,
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेष की,
हे मातृभूमि! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश है।[13]

मैथिलीशरण गुप्त की रचनायें और रामनरेश त्रिपाठी के कथा काव्य और माखनलाल चतुर्वेदी की सांकेतिक कवितायें भी है। बहुत बड़ा असंतुलित राष्ट्रीय कविताओं का भण्डार इस शताब्दी के दो दशकों में हमारे पास इकट्ठा हो गया है। यह भावी पीढ़ियो की महत्वपूर्ण ऐतिहासिक निधि होगी, इसमें सन्देह नहीं। देश प्रेम मानव और कवियों का वह बोध है जिसके अन्तर्गत वह अपनी मातृभूमि की परम्पराओं, इतिहासों, उपलब्धियों के साथ विभोर हो अपने देश की माटी का चंदन और अभिनन्दन करता है। भारतीय संस्कृति में जननी और जन्मभूमि को स्वर्ग से भी श्रेष्ठ माना गया है। 'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी', इस प्रकार यदि विचार किया जाये तो यह स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि इकबाल ने वतन का जो तराना छेड़ा था अथवा वतनियत के जो गीत गाये थे। भारत भूमि की प्रशस्त गान से सम्बन्धित अनेकों शुभेच्छायें जुड़ी हुई थी। वे लिखते हैं –

'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा।
हम बुलबुले हैं इसकी ये गुलिस्तां हमारा।
गुरूबत में हूँ अगर हम रहता है दिल वतन में,
समझ वहीं हमें भी दिल हो जहां हमारा।
परबत वह सबसे ऊँचा हम साया आस्मां का,
वह सन्तरी हमारा, वह पासवां हमारा,
गोदी में खेलती है उसकी हजारों नदियाँ,
गुलशन हैं जिनके दम से रिश्के जिना हमारा,
ऐ आब रूदे गंगा वह दिन है याद तुमको,
उतरा तेरे किनारे जब कारवाँ हमारा।
मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना,
हिन्दी है हम वतन हैं हिन्दोस्तां हमारा।
यूनान व मिस्र व रूमा सब मिट गये जहाँ से

अब तक मगर है बाकी नामो निशां हमारा।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जमा हमारा
इकबाल कोई मरहम अपना नहीं जहाँ में,
मालूम क्या किसी को दर्दे निहाँ हमारा।[14]

बीसवीं शताब्दी के पहले दो दशकों के काव्य में जो नई चेतना आई, उसका कारण वे आन्दोलन ही थे जिन्होने हिन्दू जातीयता और हिन्दू राष्ट्रीयता को जन्म दिया। सन् 1921 के आसपास भारतीय राष्ट्रीयता का युग आता है, तब हम भूल जाते हैं कि इस राष्ट्रीयता की भित्ति हिन्दू राष्ट्रीयता पर रखी गयी थी, द्विवेदी युग का काव्य इसलिये एक विशेष ऐतिहासिक महत्व रखता है। साहित्य और कला की दृष्टि से उसमें बहुत नहीं है, परन्तु हिन्दुओं की कई करोड़ जनता को सक्रिय, सजीव और क्रियमाण बनाने में यह काव्य सफल रहा है।

''भारत–भारती'' काव्य हिन्दी प्रदेश के एक कोने से दूसरे कोने तक जनता का कण्ठहार हो रहा था। उस समय राष्ट्रीयता के सक्रिय रूप का जन्म भी नहीं हुआ। अभी भारतीय राजनीति क्षेत्र में गांधी जी ने पदापर्ण भी नहीं किया था। इस काव्य ने हिन्दू धर्म, हिन्दू दर्शन, हिन्दू पुराण और हिन्दुओं के प्रसिद्ध साहित्यिक ग्रन्थों की ओर देखा। एक दशक के भीतर ही खड़ी बोली की हिन्दी कविता में साहित्यिकता की यथेष्ट मात्रा आ गई, इसका कारण यह है कि उसने प्राचीन संस्कृत ग्रंथों से सहारा लिया। द्विवेदी जी ने संस्कृत वृत्तों और महान संस्कृत ग्रन्थों की ओर इशारा किया। उन्होंने लिखा –

अंग्रेजी ग्रंथ समूह बहुत भारी है,
अति विस्तृत जलधि समान देहधारी है,
संस्कृति भी सबसे लिये सौख्यकारी है,
उसका भी ज्ञानागार हृदय हारी है,
इन दोनों से ही अर्थ रत्न ले लीजे,
हिन्दी को अर्पण उन्हें प्रेमयुक्त कीजे।[15]

उपर्युक्त से यह स्पष्ट है कि हिन्दी आधुनिक काव्यधारा का मूल स्वर राष्ट्रवादी है।

मैथिलीशरण की काव्यधारा में भारतीय अतीत की स्वर्णिम पक्ष सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का स्वर लेकर मुखरित हुआ है। उन्होंने राम और कृष्ण की कालजयी कथा को लेकर साकेत और जय भारत, जयद्रथ वध जैसी रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना के इसी पक्ष का रूपायन किया है। भारत की अतीत कालीन राज्य व्यवस्था में राजतन्त्र–प्रजातन्त्र का प्रतीक था। गुप्त जी की रचनाओं में भारतीय संस्कृति कूट–कूट कर भरी हुई है।

राष्ट्रीय कवि गुप्त आज की राष्ट्र भावना के सबसे बड़े पोषक हैं। परन्तु वे जानते हैं कि एक राष्ट्र के रूप में भारत की कल्पना चाहे जितनी आधुनिक हो भाषा, धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में देश सर्वत्र अविच्छिन्न और अखण्डित था। इस अविच्छिन्न और अखण्डित देश की भावना कवि को प्रेरणा देती है। भारत की सारी प्राचीन चिन्ता कवि की राष्ट्रीयता की भित्ती बन जाती है। इसीलिये राष्ट्रीय कवि गुप्त जी को हिन्दू जातीयता का कवि कहना कोई विरोधी बातें नहीं हुई।[16]

वस्तुतः गुप्त जी का काव्य भारत के प्राचीन संस्कृति, प्राचीन धर्मनीति और राष्ट्र की गौरव, पूर्ण गाथा से मण्डित है। इसी सबके बीच उनकी आधुनिकता और राष्ट्रीयता भी अपना स्थान बनाये हुए है। गुप्त जी की प्राचीन इतिहास के साथ साथ आधुनिक राष्ट्रीय आन्दोलनों को भी अपने काव्य में समेटे चले हैं। उन्हें राष्ट्र का मस्तक ऊँचा उठाने वाले विषयों और व्यक्तियों की खोज रहती है।[17] उनकी राष्ट्रवादी चेतना भारत भूमि की उन्नति, व्यवस्था, विकास की सृष्टि द्वारा इस देश में राम राज्य की स्थापना की ओर उन्मुख रही। देश और जाति की रक्षा और उसके विकास हेतु वे प्रत्येक व्यक्ति को संघर्षो से जूझने की प्रेरणा देते रहे। साकेत के शत्रुघ्न भरत से कहते हैं –

भारत लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बन्धन में,
सिन्धु पार वह विलख रही है, व्याकुल मन में,
बैठा हूँ मै भण्ड साधुता धारण करके,
अपन मिथ्या भरत नाम को धारण करके।[18]

गुप्त जी की भारत भारती, स्वदेश संगीत तथा पद्य प्रबन्ध राष्ट्रीय प्रगीतों से परिपूर्ण है। भारत–भारती के तीनों अतीत वर्तमान, भविष्यत खण्डों में देश की ही दशा अलिखित है। उसमें अपने देश की श्रेष्ठता का प्रतिपादन पूर्वजों का गौरव–गान, प्रचीनों की उदात्त वीरता का बखान बड़ी श्रद्धा भक्ति और तन्मयता से हुआ है। कितने विश्वास के साथ मैथिलीशरण गुप्त आत्म गौरव का वर्णन करते हैं–

भूलोक का गौरव प्रकृति का पुण्य लीला स्थल कहाँ,
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगा जल कहाँ।
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का है, उत्कर्ष
उसका कि जो ऋषि भूमि है, वह कौन? भारतवर्ष।[19]

यहाँ व्यक्तित्व के अभाव की शंका हो सकती है किन्तु वे पंक्तियाँ कवि के हृदय रस से सिक्त है। उसकी अपनी दृष्टि है। और अपने अनुराग से सराबोर है, यह उद्धरण अतीत खण्ड का है। वर्तमान खण्ड में भी राष्ट्र भावना के ही दर्शन होते हैं वहाँ भी कवि की करूणा उमड़ पड़ती है और भविष्यत खण्ड में एक आदर्श एवं मनोरम भारत की कल्पना एवं कामना की गई है। अन्तिम ''विनय'' की प्रेरक भी भक्ति न होकर राष्ट्रीयता ही है –

इस देश को हे दीन बन्धो? आप फिर अपनाइये,
भगवान? भारत वर्ष को फिर पुण्य भूमि बनाइये।
जड़ तुल्य जीवन आज इसका विघ्न बाधा पूर्ण है,
हेरम्ब ! अब अवलम्ब देकर विघ्नतर कहलाइये।[20]

देश प्रेमी, देश के प्रत्येक व्यक्ति और वस्तु से प्रेम करता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में, ''यदि किसी को अपने देश से प्रेम है तो उसे अपने देश के मनुष्य, पशु, पक्षी, लता, गुल्म, पेड़, पत्ते, वन, पर्वत, नदी, निर्झर सबसे प्रेम होगा, सबको यह चाह भरी दृष्टि से देखेगा, सबकी सुधि करके वह विदेश में आँसू बहायेगा।[21] गुप्त जी को वस्तुतः स्वदेश से अपार प्रेम है। राष्ट्रीयता का आधारभूत यह प्रेम उसकी शिराओं में संचरित है। 'पद्य–प्रबन्ध'' के निम्न छन्द से प्रतीत होता है कि कवि को देश को देश के जाज्वल्यमान उपकरणों से ही नहीं, धूलि से भी अपरिमित अनुराग है –

जिसकी रज में लोट लोट कर बड़े हुए हैं,
घुटनों के बल सरक–सरक कर खड़े हुए हैं।
परम हस सम बाल्यकाल में सब सुख पाये,
जिसके कारण धूल भरे हीरे कहलाये।
हम खेलें कूदें हर्षयुत जिसकी प्यारी गोद में,
हे मातृभूमि तुझको निरख हम मगन क्यों न हो मोद में।[22]

गुप्तजी ने यह माना था कि राष्ट्रोत्थान और राष्ट्रीय चेतना के लिये जातीय और साम्प्रदायिक समन्वय आवश्यक है। इतना ही नहीं उन्हें इस्लाम का सह अस्तित्व भी स्वीकार्य है। सिद्धराज से मुसलमानों के प्रति कहलवाया है –

कह दो पुकार कर तुम–वह एक है,
और हम पावें उसे चाहे जिस रूप में,
ईश्वर के नाम पर कलह भला नहीं,
देखता है भाव मात्र वह निज भक्त का।[23]

सं. 2013 में प्रकाशित अपनी नवीनतम पुस्तक ''राजा प्रजा'' में उन्होने विश्व बन्धुत्व अथवा विश्वैक मानवता का स्पष्ट प्रतिपादन किया है –

''किन्तु हमारा लक्ष्य, एक अम्बर भू सागर,
एक नगर सा बने, विश्व, हम उसके नागर।"[24]

इस प्रकार गुप्त जी की समूची काव्य कृतियों में राष्ट्र को सम्बलित करने वाली शक्ति के रूप जाति सम्प्रदाय के समन्वय के साथ राष्ट्रीयता को वह रूप दिया है जिसमें वह अन्तर्राष्ट्रीयता का रूपायन करने लगी है। सिक्ख धर्म के गुरूओं के प्रति श्रद्धा यदि गुरूकुल में दिखाई दी है तो कर्बला में इस्लाम धर्म के प्रति पूज्य दृष्टि प्रस्तुत की गई है। कुल मिलाकर गुप्त जी की काव्य चेतना में भारत की राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का स्वर ही प्रमुख रूप से अनुगुंजित है।

गुप्त जी ने जनता की आशा, आकांक्षा की वाणी देते हुए सम्पूर्ण राष्ट्र को राष्ट्रीय चेतना और स्वाधीनता संग्राम की बलि वेदी पर मोड़ा है। इस दृष्टि से उनकी निम्न पंक्तियाँ विशेष विचारणीय है –

निकल पड़ो अब बनकर सैनिक, भय न करो अब प्रानों का,
बिन स्वराज्य के नहीं हटेंगे, कौल रहे मरदानों का,
अन्धे होकर पुलिस चलाये डन्डे कुछ परवाह नहीं,
घर का माल लूट जाये, निकले मुंह से आह नहीं,
जेल यातना हो निर्दय दल करें गोलियों की बौछार,
ईश्वर का सुमिरन कर वीरों, सहते जाओ अत्याचार,
धनी देश रिपु, दास नपुंसक लखे दृश्य बलिदानों का,
बिन स्वराज्य के नहीं हटेंगे, कौल रहे मरदानों का।

भारतीय संस्कृति राष्ट्रीय चेतना अपनी सम्पूर्णता में गुप्त जी की कालजयी कृतियों में रेखांकित है। सनातन भारतीय जीवन आदर्शों में उनकी कृतियों का प्राणतत्व है। उनकी काव्य कृतियों में जीवन के आदर्श पहलू निहित हैं। उनकी रचनाओं में अपनी क्रमबद्धता में राष्ट्रीय चेतना एवं सांस्कृतिक चेतना विद्यमान है। उनके काव्य में राष्ट्रीय चेतना का विवरण स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।

गुप्तजी के साहित्य में राष्ट्रीय आंदोलन के सजीव चित्र हैं। 'रंग में भंग' तथा 'भारत भारती' में देश प्रेम और राष्ट्रीयता का स्वर प्रखर है। गुप्तजी की कविता का मूल स्वर राष्ट्रीयता है। राष्ट्रीय भावना का बहुत व्यापक रूप उनके काव्य में मिलता है। कविता के द्वारा उन्होंने भारतीय जनमानस को राष्ट्रीय चेतना की ओर उन्मुख करने का महान प्रयत्न किये हैं। वस्तुतः उनके साथ की मूल सत्ता राष्ट्रीय भावना का रेखांकन तथा स्वदेश का गुणगान से जुड़ी है। राष्ट्र धर्म को सर्वोपरि मानते हुये उन्होंने राष्ट्रीय जीवन धारा के साथ देश की जनता को जोड़ने का उत्कृष्ट कार्य किये हैं। उनकी रचनाएं इस बात की सबूत है कि राष्ट्रीय हित सर्वोपरि है।

भारत–भारती से अखण्ड राष्ट्रीय भावना का शंखनाद करने वाले राष्ट्रकवि गुप्त जी की अनेक रचनाएं राष्ट्रीयता से ओत प्रोत है। वे मूलतः राष्ट्रीय भावना के कवि हैं। भारत–भारती और 'स्वांश' 'संगीत के अतिरिक्त भी अनेक फुटकर कविताओं में उनका राष्ट्रीय स्वर ही अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा के साथ प्रखर है। उन्होंने भारत–भारती में राष्ट्रीय चेतना व मातृभूमि की महत्ता को स्थान स्थान पर प्रतिपार्षित किये हैं। भारतवर्ष की भूमि अनेक भावों में निखरी है। यह ब्रह्मस्वरूप लक्ष्मी रूपिणी, धन, धान्यपूर्णा, दुर्गाग्य रूद्राणी स्वरूपा शत्रु सृष्टि लयंकारी और ज्ञान गौरव शालिनी है। यह बहुत महान है। विश्व में सर्वोपरि है। उदाहरण –

"ब्रह्मी स्वरूपा, जन्मदात्री, ज्ञान गौरव शालिनी,
प्रत्यक्ष लक्ष्मी रूपिणी धन धान्यपूर्णा, पालिनी
दुर्घर्ष रूद्राणी स्वरूपा शत्रु सृष्टि लयंकारी,
वह भूमि भारतवर्ष की भूरि भावों से भरी।"[25]

भारतवर्ष की महानता का गुणगान करते गुप्तजी अघाते नहीं है। उन्होंने जीवन भर राष्ट्रीयता का मान गाये हैं, उनकी अनेक कविताएं राष्ट्रीयता की चेतना से प्रणोदित है। देश प्रेम व राष्ट्रीयता भावना गुप्त जी के हृदय में गहराई से किये गये थे। उन्होंने भारत की बहुत बड़ी प्रशंसा किये हैं, भारत की विजय की मेरी और 'भारत की जय'' शीर्षक कविताएं राष्ट्रीयता की दृष्टि से बेजोड़ है –

'भजो भारत को तन मन से।
बनो जड़ हाथ, न चेतन से।।
करते हो किस दृष्ट देव का
आंख मूंद कर ध्यान?
तीस कोटि लोगों में देखो
तीस कोटि भगवान।
मुक्ति होगी इस साधन से
भजो भारत को तन मन से।।[26]

और इसी प्रकार राष्ट्रीयता का आकर्षक उदाहरण –

मस्तक ऊँचा हुआ मही का।
धन्य हिमालय का उत्कर्ष।
हरि का क्रीड़ा क्षेत्र हमारा।
भूमि भाग्य सा भारत वर्ष।
लेखा श्रेष्ठ इसे इष्टों ने
इष्टों ने देखा दुर्घर्ष।
हरि का क्रीड़ा क्षेत्र हमारा
भूमि भाग्य सा भारतवर्ष।।[27]

गुप्त जी की आत्मा स्वदेश प्रेम एवं भारतीय राष्ट्रीयता के अनुराग से अनुप्राणित है। राष्ट्र भक्ति की अबाधित व अग्रज धारा उनकी कविताओं में प्रवाहमान है। वे भारतीय राष्ट्रीयता स्वतंत्रता आन्दोलन के अग्रणी कवितयों में एक है। राष्ट्रीय भावना के महान कवि देश प्रेम के अमर गायक गुप्त जी की कविताएं अपनी राष्ट्रीय वस्तुमत्ता में बेजोड़ है। इस क्षेत्र में वे बहुत आगे है। स्वतंत्रता आंदोलन में उनकी प्रसिद्ध कृति भारत–भारती का बहुत बड़ा योगदान रहा है। राष्ट्रीय चेतना प्रधान कृति भारत–भारती से ही गुप्त जी की राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक ख्याति प्राप्त हुई थी। स्वदेश प्रेम से आबद्ध उनके अनेक फुटकर गीतों में राष्ट्रीय अनुराग का भाव धारा अनवरत प्रवाहित है। उनके रचना कर्क की सम्पूर्ण वस्तुमत्ता व्यापक राष्ट्रीय प्रेम से अनुरक्त दिखाई देती है। राष्ट्रीय प्रेम का बहुत संयमित संतुलित और अनुशासित स्वर उनकी अनेक कविताओं में विद्यमान है। उनमें राष्ट्रीयता की सार्थक भावना विद्यमान है।

निष्कर्ष –

निष्कर्षतः राष्ट्रकवि ने राष्ट्र उत्थान के लिये देशवासियों को कठिन से कठिन त्याग करने की प्रेरणा दी है। राष्ट्र प्रेम और भारतीय संस्कृति उनके काव्यों का प्राण है। गुप्त जी के काव्यों में साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना मानव जीवन को उच्चादर्शों की ओर प्रेरित करने वाली और शाश्वत

मूल्यों की रक्षा करने वाली है। भारतीय जनजीवन को स्फूर्ति उत्साह प्रदान कर उसे गरिमा मंडित करने वाली है।

संदर्भ –

1 भटनागर, डॉ. राम रतन – मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ 33, 34
2 गुप्त, मैथिलीशरण – संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ 498
3 गुप्त, मैथिलीशरण – हिन्दी नाटकों में राष्ट्र चेतना, पृष्ठ 35
4 'मानव', विश्वम्भर – गुप्त जी की कृतियाँ, पृष्ठ 10
5 'मानव', विश्वम्भर – गुप्त जी की कृतियाँ, पृष्ठ 11
6 'मानव', विश्वम्भर – गुप्त जी की कृतियाँ, पृष्ठ 11
7 'मानव', विश्वम्भर – गुप्त जी की कृतियाँ, पृष्ठ 12
8 गुप्त, मैथिलीशरण – अजित से उद्धृत
9 गुप्त, मैथिलीशरण – भारत–भारती से उद्धृत
10 दीक्षित, डॉ. आनन्द प्रकाश – मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ 79
11 दीक्षित, डॉ. आनन्द प्रकाश – मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ 80
12 दीक्षित, डॉ. आनन्द प्रकाश – मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ 110
13 भटनागर, डॉ. राम रतन – मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ 57
14 चिशती, प्रो. युसुफ सलीम – बाँग–ए–दरा, पृष्ठ 202
15 भटनागर, डॉ. राम रतन – मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ 48
16 भटनागर, डॉ. राम रतन – मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ 112–113
17दीक्षित, डॉ. आनन्द प्रकाश – गुप्त जी के काव्य में सांस्कृतिक चेतना और नवोन्मेष, पृष्ठ 81
18 गुप्त, मैथिलीशरण – साकेत से उद्धृत।
19 गुप्त, मैथिलीशरण – भारत–भारती से उद्धृत।
20 गुप्त, मैथिलीशरण – भारत–भारती से उद्धृत।
21 शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र – चिन्तामणि, भाग–1, 'लोभ और प्रीति निबन्ध'
22 गुप्त, मैथिलीशरण – पद्य प्रबन्ध, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 30
23 गुप्त, मैथिलीशरण – सिद्धराज, संस्करण 3, पृष्ठ 109
24 गुप्त, मैथिलीशरण – राजा–प्रजा, प्रथम वृत्ति, पृष्ठ 46
25 गुप्त, मैथिलीशरण – भारत–भारती से उद्धृत
26 गुप्त, मैथिलीशरण – भारत की जय से उद्धृत
27 गुप्त, मैथिलीशरण – भारत की जय से उद्धृत